International Journal of Educational Research and Development
www.journalofeducation.in
Online ISSN: 2664-7095; Print ISSN: 2664-7087; Impact Factor: RJIF 5.26
Received: 07-06-2019; Accepted: 23-06-2019; Published: 26-07-2020
Volume 2; Issue 2; 2020; Page No. 17-21

भारतीय समाज में धार्मिक व्यवस्था एवं अंतर पीढी संघर्ष

डॉ. सुमन कुमारी
पूर्व–शोधप्रज्ञा, विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार, भारत

सारांश
भारतीय समाज धर्म–प्रधान समाज कहलाता रहा है और यहाँ धर्म को प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता प्राप्त रही है। धर्म व्यक्ति, परिवार, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को अगणित रूपों में प्रभावित करता रहा है। यहाँ भौतिक सुख प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य नहीं मानकर धर्म संचय को प्रधानता दी गयी है। धर्म की धारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को करता है, जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाये रखती है। धर्म हिन्दुओं के जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा है। परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है। जब किसी युवा के वास्तविक–अहम् और आदर्शीकृत– अहम् के बीच अन्तर पड़ जाता है अर्थात् जब उसकी वास्तविक स्थिति उन ऊँची स्थितियों से भिन्न होती है, जहाँ तक पहुँचने की आकांक्षा रखने को वह किसी–न–किसी कारण से अभिप्रेरित होता है और जब दोनों स्थितियों के मध्य असंगति होती है तो वह संघर्ष की स्थिति होती है। युवा वर्ग वैज्ञानिक सोच के आधार पर पुरानी परंपराओं में परिवर्तन चाहते हैं जबकि बुजुर्ग वर्ग पुरानी परंपराओं को ही ढोना चाहते हैं। यहाँ यभी कहा जा सकता है कि इसमें अहं की टकराहट भी होती है।

कूट शब्दः भारतीय समाज, धार्मिक व्यवस्था, अंतर पीढी संघर्ष

प्रस्तावना

धर्म के अर्थ को 'रिलीजन' शब्द के अनुवाद के रूप में नहीं समझा जा सकता। धर्म एक अत्यन्त व्यापक प्रत्यय है। धर्म उस मौलिक शक्ति के रूप में जाना जा सकता है जो भौतिक और अभौतिक व्यवस्था का आधार रूप है और जो उस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। गिलिन और गिलिन ने लिखा है एक सामाजिक समूह में व्याप्त उन संवेगात्मक विश्वासों को जो किसी अलौकिक शक्ति से संबंधित है और साथ ही ऐसे विश्वासों से संबंधित प्रकट व्यवहारों, भौतिक वस्तुओं एवं प्रतीकों को धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र में सम्मिलित माना जा सकता है। [1]

सामान्यतः धर्म का अर्थ अदृश्य, अलौकिक एवं अतिमानवीय शक्तियों पर विश्वास से लिया जाता है। कई समाज वैज्ञानिकों ने धर्म को इसी रूप में परिभाषित किया है। टायलर के अनुसार धर्म अध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास है। [2] सर जेम्स फ्रेजर के अनुसार धर्म को मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके संबंध में ये विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव को मार्ग दिखाती और नियंत्रित करती है। [3]

किन्तु हिन्दुओं में 'धर्म' शब्द का प्रयोग उपर्युक्त अर्थों से भिन्न अर्थ में किया गया है। भारतीय धर्म–ग्रन्थों में धर्म का अर्थ कर्त्तव्य, स्वभाव, करने योग्य कार्य, वस्तुओं के आन्तरिक पवित्रता, आदि से लिया गया है। शाब्दिक दृष्टि से 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है–धारण करना, बनाये रखना अथवा पुष्ट करना। धर्म का अर्थ सभी जीवों के प्रति दया धारण करने से है। धर्म सभी प्राणियों की रक्षा करता है।

हिन्दू धर्म एक ज्ञान है जो अलग–अलग परिस्थितियों में व्यक्तियों के विभिन्न कर्त्तव्यों को बतलाता है, उन्हें कर्त्तव्य–पथ पर बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करता है, मानवोचित गुणों को उनमें विकसित करता है। वेद, उपनिषद्, गीता, स्मृतियाँ, पुराण तथा मनुष्य का अन्तःकरण हिन्दू धर्मा के मूल स्रोत है। ये ग्रन्थ ऋषियों के अनुभूत प्रयोगों के परिणाम है, उनके चिन्तन, मनन के उज्जवल उदाहरण है। इन धर्म–ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। इन ग्रन्थों में धर्म की विस्तृत व्याख्या की गयी है, अनेक अर्थों में धर्म का प्रयोग किया गया है। डॉ. इन्द्रदेव ने श्री मीज को उद्धृत करते हुए लिखा है, ''धर्म के अन्तर्गत नैतिक नियम, कानून, रीति–रिवाज, वैज्ञानिक नियम, इत्यादि बहुत सी धारणाएँ आ जाती है।'' [4]

धर्म का प्रयोग नैतिक कर्तव्यों के रूप में भी किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों की विवेचना की गयी है। ये लक्षण है– धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय–निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध पर नियंत्रण। [5] पुण्य और नैतिक व्यवस्था के रूप में भी धर्म का प्रयोग किया गया है। व्यक्ति के पुण्य–कर्म ही मृत्यु के पश्चात उसका साथ देते हैं। धर्म की व्यक्ति में अच्छे और बुरे कर्मों का फल निम्न, साथ ही व्यकित को अपने सभी प्रकार के कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

धर्म का निष्काम भक्ति के रूप में भी प्रयोग किया गया है। गीता में निष्काम कर्म की ओर व्यक्ति को अग्रसर किया गया है, उसे बतलाया गया है कि बिना फल की कामना के अपना कर्म करना चाहिए, अपने कर्त्तव्य–पथ पर सदैव बढ़ते जाना चाहिए। परम सत्य अथवा ईश्वर के रूप में भी धर्म को माना गया है। धर्म का प्रयोग रीति–रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक नियमों और कानून के रूप में किया गया है।

श्री.पी.वी.काणे ने धर्म को परिभाषित करते हुए बतलाया है, धर्मशास्त्र के लेखकों ने धर्म का अर्थ एक मत या विश्वास नहीं माना है, अपितु उसे जीवन के एक ऐसे तरीके या आचरण की एक ऐसी संहिता माना है जो एक व्यक्ति के समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्ति के रूप में कार्य एवं क्रियाओं को नियमित करता है और जो व्यक्ति के क्रमिक विकास की दृष्टि से किया जाता है और जो इसे मानव अस्तित्व के उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायता करता है। [6]

भारतीय धर्म–ग्रन्थों में धर्म का प्रयोग संकुचित अर्थों, किसी सम्प्रदाय विशेष के विचार मात्र को व्यक्त करने तथा केवल अलौकिक सत्ता के संबंध में विश्वासों को प्रकट करने के लिए नहीं हुआ है। इसका प्रयोग व्यापक अर्थों में हुआ है। धर्म मानव को कर्त्तव्य बतलाया है, उसे सत्य की ओर अग्रसर करता, उसके व्यवहार को दिशा देता और

उचित—अनुचित का बोध कराता है, धर्म की समाजशास्त्रीय विवेचना के रूप में धर्म के अन्तर्गत उन सब कर्त्तव्यों को लिया जा सकता है जो व्यक्ति के जीवन को सफल बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।

हिन्दू धर्म के तीन प्रमुख स्वरूप माने गये हैं—

1. सामान्य धर्म : सामान्य धर्म को मानव धर्म भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे नैतिक नियम आते हैं जिसके अनुसार आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का परम दायित्व है। इस धर्म का लक्ष्य मानव मात्र में सद्गुणों का विकास और उसकी श्रेष्ठता को जाग्रत करना है। यह वह धर्म है जो प्रत्येक के लिए अनुकरणीय है। चाहे बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या अमीर, स्वर्ण हो या अवर्ण, राजा हो या प्रजा, सबके लिए सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक कर्त्तव्य है। श्रीमद्भागवत् में सामान्य धर्म के ये तीस लक्षण बतलाये गये हैं —सत्य, दया, तपस्या, पवित्रता, कष्ट सहने की क्षमता, उचित—अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, सभी के लिए समान दृष्टि, सेवा, उदासीनता, मौन, आत्म चिन्तन, सभी प्राणियों में अपने अराध्य को देखना, और उन्हें अन्न देना, महापुरुषों का संग, ईश्वर का गुण—गान, ईश्वर—चिन्तन, ईश्वर सेवा, पूजा और यज्ञों का निर्वाह, ईश्वर के प्रति दास्य—भाव, ईश्वर वन्दना, सखा—भाव, ईश्वर को आत्म—समर्पण। [7] धर्म के ये लक्षण सामान्यतः सभी संस्कृतियों में पाये जाते हैं। ये ऐसे लक्षण है जो व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास में योग देते हैं जो व्यक्ति को दायित्व निर्वाह की ओर अग्रसर करते हैं, तथा अध्यात्मिकता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

2. विशिष्ट धर्म : विशिष्ट धर्म को 'स्वधर्म' भी कहा गया है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वे कर्त्तव्य आते हैं जिनका समय, परिस्थिति और स्थान विशेष को ध्यान में रखते हुए पालन करना व्यक्ति के लिए आवश्यक है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र, गुरु—शिष्य, पति—पत्नी, माता— पिता और पुत्र सभी के लिए अलग—अलग कर्त्तव्यों के निर्वाह की बात कही गई है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, राजधर्म, युगधर्म, मित्र धर्म, गुरु धर्म आदि आते हैं। [8]

जैसे कुल धर्म का लक्ष्य पारिवारिक संगठन को बनाये रखना, कुल परम्पराओं की रक्षा और विभिन्न सरकारों को पूर्ण करना है। परिवार के सदस्य के रूप में व्यक्ति के अन्य सदस्यों के प्रति कुछ कर्त्तव्य होते हैं। पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, माता—पिता का सन्तान के प्रति और सन्तान का माता—पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति कुछ कर्त्तव्य, कुछ धर्म होता है। परिवार में प्रत्येक सदस्य से उसकी विशिष्ट प्रस्थिति और आयु के अनुसार व्यवहार करने की आशा की जाती है।

मित्र धर्म के अन्तर्गत एक मित्र के दूसरे मित्र के प्रति कर्त्तव्य आते हैं, जो दोनों पक्षों के लिए समान रूप से मान्य होते हैं। मित्र और मित्र में आयु, धन और पद के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद नहीं किया जाता। एक मित्र का अपने मित्र के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वह सुख—दुख में उसका साथ दें, कर्तव्य का पालन करने के लिए उसे प्रेरित करे, मन, कर्म और वचन से उसकी रक्ष करे और आवश्यकता पड़ने पर उसके लिए सब प्रकार का त्याग करने के लिए तत्पर रहे। हिन्दू समाज में गुरु को बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है, परन्तु साथ ही उसके कुछ कर्त्तव्य भी बतलाये गये हैं, उसे सदैव अपने शिष्यों की हित कामना, लोभ एवं दम्भ से दूर रहना तथा अहिंसा और त्याग भावना से ज्ञान का प्रसार करना चाहिए।

वर्तमान समय में अनेक कारकों ने हिन्दू धर्म के प्रभाव को क्षीण करने में योग दिया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता का विस्तार, शिक्षा के बढ़ते प्रभाव और प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा सरकारी नीतियों ने समाज को परम्परावादी से आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने में मदद की है। आज व्यक्ति पर विज्ञान और औद्योगिकरण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जीवन की विविध क्रियाओं में धर्म निरपेक्षवाद को प्रोत्साहन मिलता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज का व्यक्ति धर्म के नाम पर पाखण्डवाद को और अधिक सहन करने को तैयार नहीं है।

भारतीयों की जाति—प्रथा, संयुक्त परिवार की प्रणाली, विवाह— पद्धतियाँ, स्त्री—जीवन, यौन—आकर्षण, प्रथाओं और परम्पराओं पर भारी प्रभाव पड़ा है। ये लोग आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति का स्वरूप साथ लाये जिसने भारतीय दासदृजनता को चकाचौंध कर दिया और यहाँ के लोग उसके पीछे चल पड़े। उनका प्राचीन भारतीय संस्कृति से विश्वास उठ गया। आज परिस्थिति यह है कि नये पीढ़ी के लोग अपनी प्राचीन संस्कृति पर विश्वास नहीं रखते और पुरानी पीढ़ी के लोग नई संस्कृति को नहीं अपनाते। फलतः अंतर पीढ़ी संघर्ष उत्पन्न होता है।

अंतर पीढ़ी संघर्ष

बुजुर्गों या बड़े व्यक्तियों द्वारा लगाई गई रोक—टोक युवा में अनेक सांवेगिक समस्याएं पैदा कर देती हैं। इस अवस्था में प्रणय एवं व्यापार से सम्बन्धित समस्याएं भी युवा को कुंठित कर देती है। अनेक संवेग, जैसे— क्रोध, भय, व्याकुलता, ईर्ष्या, स्पर्धा, प्रसन्नता, स्नेह आदि युवाओं पर हावी रहते हैं जो उन्हें प्रभावित करते हैं। युवा जो कार्य करना चाहता है उसमें रूकावट पड़ना, अपमानजनक टीका—टिपण्णी, बड़ों का अनचाहा परामर्श युवा को क्रोधित कर देता है। इस अवस्था में विषमलिंगियों में रूचि स्वाभाविक होती है, यदि उसमें रोक टोक होती है तो उसके संवेग प्रबल हो जाते हैं। कभी—कभी युवा को अनावश्यक व्याकुलता व ईर्ष्या, साथी समूह से किसी विषय में स्पर्धा, अपनी सामाजिक— आर्थिक स्थिति की दूसरे की स्थिति से तुलना करके उससे ईर्ष्या या स्पर्धा हो जाती है, जो एक समस्या का रूप ले लेती है। इसी प्रकार युवाओं में स्नेह और प्रसन्नता का संवेग भी तीव्र होता है लेकिन यदि इनका प्रदर्शन किसी के द्वारा बाधित हो जाता है तो उसके लिए यह भी एक समस्या बन जाती है। इस अवस्था में युवा किसी एक व्यक्ति से अत्यधिक स्नेह करता है जो उनका 'आदर्श' होता है। नायक पूजा का भाव इस उम्र की विशेषता होती है किन्तु यदि वह व्यक्ति जिसे युवा ने अपना नायक माना है, उसकी आशाओं के विपरीत पाया जाता है तो युवाओं के लिए विषम स्थिति हो जाती है, वह अपने संवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाता है और संवेगात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त कर देता है। इस प्रकार यद्यपि संवेगों पर नियंत्रण करना युवा सीख जाते हैं किन्तु कभी—कभी उनके लिए समस्या भी बन जाती हैं। इससे उनका व्यवहार प्रभावित होता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का युवा संस्कृति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। एक तरफ जहाँ युवा का सकारात्मक रूप से समाजीकरण हो रहा है वहीं युवाओं का नकारात्मक दिशाओं की तरफ भटकाव भी हो रहा है अर्थात् उनका विसमाजीकरण भी हो रहा है। हमारे शोध के अन्तर्गत युवाओं की नयी उभरती आकांक्षाओं को जानने का प्रयास किया गया है। युवाओं की आकांक्षाएँ न सिर्फ सामाजिक एवं वैयक्तिक है बल्कि उनकी व्यावसायिक एवं राजनीतिक आकांक्षाएँ भी उभर रही है जो उन्हें विकास की नई दिशा में ले जा रही है। लेकिन बुजुर्गों का युवाओं की उभरती आकांक्षाओं को स्वीकार करने में कहीं न कहीं नकारात्मक सहयोग रहा है जिसके कारण युवाओं के समक्ष अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में समस्याएं आ रही है। युवा वर्ग वैज्ञानिक सोच के आधार पर पुरानी परंपराओं में परिवर्तन चाहते हैं जबकि बुजुर्ग वर्ग पुरानी परंपराओं को ही ढोना चाहते हैं। यहाँ यभी कहा जा सकता है कि इसमें अहं की टकराहट भी होती है। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त तथ्यों का यहाँ विश्लेषण किया जा रहा हैं।

तालिका 1: क्या आप पूजा–पाठ में समय देते हैं ?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	28	14.00	25	12.50	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	30	15.00	31	15.50	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	24	12.00	31	15.50	55 (27.50)
4.	27–29	19	09.50	12	06.00	31 (15.50)
कुल		**101**	**50.50**	**99**	**49.50**	**200 (100.00)**

क्षेत्रीय अध्ययन के क्रम में जब उत्तदाताओं से पूछा गया कि क्या आप पूजा–पाठ में समय देते हैं? इस प्रश्न के आलोक में 50.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार के पूजा–पाठ में समय देते हैं, जबकि 49.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके पास इतना समय नहीं बच पाता है कि वे पूजा–पाठ के लिए समय निकाल सके। उनका यह तर्क था कि भगवाने को सिर्फ स्मरण करना चाहिए। हृदय साफ रखना चाहिए। घंटों पूजा करने से कुछ नहीं होता।

तालिका 2: यदि नहीं, तो क्या परिवार के बड़े–बजुर्ग पूजा–पाठ करने के लिए दबाव देते है?

क्र. सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	20	10.00	05	02.50	25 (12.50)
2.	19–22 वर्ष	17	08.50	14	0700	31 (15.50)
3.	23–26 वर्ष	13	06.50	18	09.00	31 (15.50)
4.	27–29	06	03.00	06	03.00	12 (06.00)
कुल		**56**	**28.00**	**43**	**21.50**	**99 (4950)**

साक्षात्कार के क्रम में पूछे गये सवालों के जबावों में जिन 49.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे पूजा–पाठ में समय नहीं देते हैं, उनसे जब यह पूछा गया कि परिवार के बड़े–बुजुर्ग पूजा–पाठ करने के लिए दबाव देते हैं? तो उनमें से 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके परिवार के बड़े–बुजुर्ग पूजा–पाठ की अहमियत को बताते हुए उन्हें पूजा–पाठ करने के लिए दबाव देते हैं, जबकि 21.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके परिवार के बुजुर्ग ऐसा कुछ नहीं करते हैं।

तालिका 3: क्या आप सभी जाति एवं धर्म के लोगों के साथ खान–पान रखते हैं?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	44	22.00	09	04.50	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	51	25.50	10	05.00	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	50	25.00	05	02.50	55 (27.50)
4.	27–29	28	14.00	03	01.50	31 (15.50)
कुल		**173**	**86.50**	**27**	**13.50**	**200 (100.00)**

तालिका से प्राप्त तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 86.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे सभी जाति एवं धर्म के लोगों के साथ खान–पान रखते हैं। उन्हें किसी भी धर्म या जाति से कोई परहेज नहीं है, जबकि 13.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे सभी जाति एवं धर्म के लोगों के साथ खान–पान नहीं रखते हैं। ज्ञातव्य है कि वर्तमान समय में शिक्षा के बढ़ते प्रभाव तथा आधुनिकीकरण की ओर झुकती युवा पीढ़ी जाति एवं धर्म के बंधन को नहीं मानती है।

तालिका 4: यदि नहीं, तो क्या परिवार के लोग इसका विरोध करते हैं?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	02	01.00	07	03.50	09 (04.50)
2.	19–22 वर्ष	05	02.50	05	02.50	10 (05.00)
3.	23–26 वर्ष	03	01.50	02	01.00	05 (02.50)
4.	27–29	00	00.00	03	01.50	03 (01.50)
कुल		**10**	**05.00**	**17**	**08.50**	**27 (13.50)**

साक्षात्कार के दौरान जिस 13.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे सभी जाति एवं धर्म के लोगों के साथ खान–पान नहीं रखते हैं, उनमें से 05 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार इस हेतु उनके परिवार द्वारा बार–बार विरोध किया जाता है कि वे अपने से छोटे जाति या अन्य धर्म के लोगों के साथ मेल–मिलाप न रखे, उनके साथ खाये–पीये नहीं, जबकि 08.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे स्वयं ही सभी जाति एवं धर्म के लोगों के साथ खान–पान नहीं रखते हैं इसके लिए परिवार से कुछ नहीं कहा गया है।

तालिका 5: क्या बड़े–बुजर्ग का कहा नहीं मानने पर वे क्रोधित होते हैं?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	40	20.00	13	12.50	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	33	16.50	28	14.00	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	14	07.00	41	20.50	55 (27.50)
4.	27–29	05	02.50	26	13.00	31 (15.50)
कुल		**92**	**46.00**	**108**	**54.00**	**200 (100.00)**

तालिका के आधार पर जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि क्या बड़े–बुजुर्ग का कहा नहीं मानने पर वे क्रोधित होते हैं? अध्ययन में सम्मिलित युवा वर्ग के 46 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बड़े–बुजुर्ग का कहा नहीं मानने पर वे क्रोधित होते हैं, जबकि इस संबंध में 54 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे ऐसे तो परिवार के बड़े–बुजुर्ग का कहना टालते नहीं हैं यदि कभी–कभार उनके बातों को नहीं मानते हैं तो वे उन पर क्रोधित तो बिल्कुल ही नहीं होते हैं।

तालिका 6: क्या अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में आप स्वतंत्र है ?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	24	12.00	29	14.50	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	28	14.00	33	16.50	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	48	24.00	07	03.50	55 (27.50)
4.	27–29	31	15.50	00	00.00	31 (15.50)
कुल		**131**	**65.50**	**69**	**34.50**	**200 (100.00)**

क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि क्या अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में आप स्वतंत्र हैं? तालिका 8.6 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 65.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में पूर्णरूपेण स्वतंत्र हैं, जबकि इस संबंध में 34.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में स्वतंत्र नहीं हैं, उनके कार्य व्यवसाय से संबंधित निर्णय उनमें माता–पिता द्वारा या परिवार के बड़ों द्वारा लिया जाता है।

तलिका 7: यदि हाँ, तो क्या परिवार के लोग इसमें दखलअंदाजी करते हैं ?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	13	06.50	11	05.50	24 (12.00)
2.	19–22 वर्ष	09	04.50	19	09.50	28 (14.00)
3.	23–26 वर्ष	10	05.00	38	19.00	48 (24.00)
4.	27–29	07	03.50	24	12.00	31 (15.50)
कुल		**39**	**19.50**	**92**	**46.00**	**131 (65.50)**

साक्षात्कार के क्रम में जिन उत्तरदाताओं ने यह स्पष्ट किया कि वे अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में स्वतंत्र है, उनमें से 19.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में स्वतंत्र तो हैं लेकिन परिवार के सदस्य इसमें दखलंदाजी का हमेशा प्रयास करते रहते हैं, जबकि इस संदर्भ में 46.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वे अपने कार्य व्यवसाय हेतु निर्णय लेने में पूर्ण स्वतंत्र हैं परिवार का कोई भी सदस्य उनके कार्य व्यवसाय में दखलंदाजी नहीं करते हैं।

तालिका 8: क्या बड़े–बुजर्ग से वैचारिक मतभेद होता है ?

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		हाँ		नहीं		
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	18	09.00	35	17.50	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	38	19.00	23	11.50	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	26	13.00	29	14.50	55 (27.50)
4.	27–29	13	06.50	18	09.00	31 (15.50)
कुल		**95**	**47.50**	**105**	**52.50**	**200 (100.00)**

अनुसंधान के दौरान जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि क्या बड़े–बुजुर्ग से वैचारिक मतभेद होता है? तो इस प्रश्न के आलोक में 47.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनसे परिवार के बड़े–बजुर्ग के हमेशा वैचारिक मतभेद होते हैं। वे अपने बड़े–बुजुर्ग के मतों को स्वीकार नहीं करते हैं, जबकि बुजर्ग उनके मतों से सहमत नहीं होते हैं। 52.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनसे परिवार के बड़े–बुजुर्ग से किसी भी प्रकार का वैचारिक मतभेद नहीं होता है और न वह करना चाहते हैं।

तालिका 9: यदि हाँ, तो किन मुद्दों पर

क्र.सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत				कुल
		रहन–सहन	रीति–रिवाज	वैचारिक स्वतंत्रता	अन्य	
		संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	06 / 03.00	04 / 02.00	08 / 04.00	00 / 00.00	18 (09.00)
2.	19–22 वर्ष	04 / 02.00	12 / 06.00	08 / 04.00	14 / 07.00	38 (19.00)
3.	23–26 वर्ष	00 / 00.00	15 / 07.50	11 / 05.50	00 / 00.00	26 (13.00)
4.	27–29	00 / 00.00	00 / 00.00	16 / 08.00	00 / 00.00	13 (06.50)
कुल		**10 / 05.00**	**31 / 15.50**	**43 / 21.50**	**14 / 07.00**	**95 (47.50)**

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 05 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बड़े–बुजर्ग से वैचारित मतभेद का मुद्दा रहन–सहन है, 15. 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बड़े–बुजर्ग से वैचारित मतभेद का मुद्दा रीति–रिवाज है, 21.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बड़े–बुजर्ग से वैचारिक मतभेद का मुद्दा वैचारिक स्वतंत्रता है, जबकि 07 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बड़े–बुजर्ग से वैचारित मतभेद होने के कई मुद्दे होते हैं।

तालिका 10: वैचारिक मतभेद होने के कारण मुख्य कौन–कौन से है ?

क्र. सं.	उम्र समूह स्तर	अभिमत					कुल
		शैक्षिक असमानता	औद्योगिकी–करण	पाश्चात्य सभ्यता	संचार क्रांति	सभी	
		संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	संख्या / प्रतिशत	
1.	15–18 वर्ष	09 / 04.50	09 / 18.00	24 / 12.00	05 / 02.50	06 / 03.00	53 (26.50)
2.	19–22 वर्ष	12 / 06.00	21 / 10.50	14 / 07.00	04 / 02.00	10.05.00	61 (30.50)
3.	23–26 वर्ष	07 / 03.50	15 / 07.50	22 / 11.00	06 / 03.00	05 / 02.50	55 (27.50)
4.	27–29	00 / 00.00	11 / 05.50	20 / 10.00	00 / 00.00	00 / 00.00	31 (15.50)
कुल		**28 / 14.00**	**56 / 28.00**	**80 / 40.00**	**15 / 17.50**	**21 / 11.50**	**200 (100.00)**

साक्षात्कार के दौरान में जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि वैचारिक मतभेद होने के मुख्य कारण कौन–कौन से हैं तो उनमें 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वैचारिक मतभेद होने के मुख्य कारण हैं शैक्षिक असमानता, 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वैचारिक मतभेद होने के मुख्य कारण औद्योगिकीकरण हैं, 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार मुख्य कारण हैं पाश्चात्य सभ्यता, 07.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार संचार क्रांति है, जबकि 11.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वैचारिक मतभेद होने के मुख्य कारण शैक्षणिक असमानता, औद्योगिकीकरण, पाश्चात्य सभ्यता तथा संचार क्रांति ये सभी हैं।

निष्कर्ष

धर्म का प्रयोग नैतिक कर्तव्यों के रूप में भी किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों की विवेचना की गयी है। ये लक्षण है– धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय–निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध पर नियंत्रण। पुण्य और नैतिक व्यवस्था के रूप में भी धर्म का प्रयोग किया गया है। व्यक्ति के पुण्य–कर्म ही मृत्यु के पश्चात उसका साथ देते हैं। धर्म की व्यक्ति में अच्छे और बुरे कर्मों का फल निम्न, साथ ही व्यकित को अपने सभी प्रकार के कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इन बातों परेय आज के युवा को अपने वर्तमान से ही नहीं बल्कि भविष्य से भी जूझना पड़ता है। जीवन साथी का चुनाव, व्यावसायिक आत्म–निर्भरता, माता–पिता का दायित्व आदि उसके व्यक्तित्व का ही अंग है जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। यदि युवा विवेकपूर्ण तरीके से इसका हल खोजता है तो उसका व्यक्तित्व समायोजित होता है किन्तु यदि वह अपने माता–पिता, अपने नियोक्ता, साथियों और गुरुजनों से समझौता नहीं करता तो इससे उसे ही सर्वाधिक हानि उठानी पड़ती है। और अंतर पीढ़ी संर्घष परिवार को विखंडित कर देता है।

संदर्भ

1. जे.बी गिलिन एण्ड जे.पी.गिलिन, कल्चरल सोसायटी, पृ.– 459
2. ई.बी.टाइलर, प्राइमिटिव कल्चर, पृ.– 224
3. सर जेम्स फ्रेजर, गोल्डेन बाउट, पृ.– 549
4. डॉ. इन्द्रदेव, भारतीय समाज, पृ.– 391
5. मनुस्मृति, अध्याय–6 श्लोक 21
6. पी.वी.काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पृ.– 57
7. श्रीमद्भागवत्, 7–11/8/12
8. मनुस्मृति, 6/92